- पहला अध्याय -

हिंदी नाटक साहित्य का विकास

पहला अध्याय

हिंदी नाट्यसाहित्य का विकास

पृष्ठभूमि :

नाटक एक दृश्यकाव्य है। "काव्येषु नाटकं रम्यं" कहकर संस्कृत साहित्यशास्त्र में नाट्य विधा को प्रतिष्ठित किया गया है। नाटक मानवी जीवन का प्रतिबिंब है, इसलिए वह एक जीवनवादी साहित्यविधा है। इस दृष्टि से मानवी जीवन में एवं साहित्य के महत् उद्देश्य की पूर्ति के रूप में नाट्यविधा का अपना विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

भारतेन्दु युग से पूर्व, संस्कृत नाट्यसाहित्य की प्रेरणा से हिंदी में कुछ नाटकों की निर्मिति हुई। डा. दशरथ ओझाजी, विक्रम संवत बारहवी सदि में अपभ्रंश में "रासक" नामक नाटक हिंदी का पहला नाटक मानते हैं।[1] तो बाबु गुलाबराय तथा बाबु ब्रजरत्नदास का मत है कि "आनन्द रघुनंदन" हिंदी का सर्वप्रथम नाटक है,[2] तो भारतेन्दु अपने पिता द्वारा लिखित "अहुष" नाटक को पहला नाटक मानते हैं। उसके पश्चात् हिंदी में अनुदित एवं मौलिक रूप में कई नाटक लिखे गए। अनुदित नाटकों की परम्परा विक्रम संवत् १७०० वी सदी से प्रारम्भ हुई, जिसमें जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह का "प्रबोध चंद्रोदय", कवि नेवाज का "शकुंतला", महाराजा लक्ष्मणसिंह का "अभिज्ञान शाकुन्तल" आदि का नाम लिया जाता है। मौलिक नाटकों में प्राणचंद का "रामायण महानाटक", कवि उदक का "हनुमन्नाटक" तथा महाराज विश्वनाथसिंह का "हनुमन्नाटक" आदि नाटकों का समावेश किया जा सकता हैं किंतु पूर्व भारतेन्दु युगीन इन नाटकों में नाटकीय तत्त्व-विधान एवं कलात्मकता का अभाव दिखाई देता है। इनमें स्थूल कथात्मकता एवं रंजनवादिता की भरमार है। इसीकारण पूर्व भारतेन्दु युगीन नाटकों की मौलिकता विवादास्पद रही।

१.१ भारतेन्दु युग :-

हिंदी नाटक का सही सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चंद्र से हुआ। भारतेन्दु एक नाटककार के साथ-साथ एक निर्देशक, अभिनेता भी थे। प्रो. निशिकान्त ठकारजी के मत से, " .... नाटक के नये रूप की खोज के प्रयास में भारतेन्दु ने भिन्न-भिन्न नाट्यरूपों को समन्वित कर एक अव्यावसायिक रंगमंच की प्रतिष्ठा की। इस कार्य में लोकनाटकों से उन्होंने गीत, चित्रसज्जा मौन झाँकी और पदयात्मक संवाद ग्रहण किए इतना ही नहीं, उन्होंने अपने नाटक को जनता का मुंहावरा दिया, उसे समकालीन बना दिया।"[3]

एक युगान्तकारी नाटककार के रूप में भारतेन्दु हरिश्चंद्रजी हिंदी नाट्यसाहित्य में अवतरित हुए। उन्होंने कुल मिलाकर दस नाटकों की रचना की। जिनमें से कुछ रचनाएं संस्कृत नाट्यसाहित्य से अनुदित हैं। उनके मौलिक नाटकों में "विषस्य विषमौषधम्", "विद्यासुन्दर", "अंधेरनगरी", "भारत दुर्दशा", "चंद्रावली" आदि नाटक आते है। भारतेन्दुजी ने इन नाटकों में लोककलाओं का एवं संगीत-नृत्य का प्रयोग कर उसे अधिक सरस एवं लोकार्पित किया। उनके नाटक युगीन सांस्कृतिकता, राष्ट्रभावना, सामाजिक एवं राजकिय चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। संस्कृत, बंगला एवं अंग्रेजी नाट्यशैली का समन्वय भारतेन्दु के नाटकों की अपनी विशेषता रही।

भारतेन्दु की नाट्यप्रतिभा से प्रभावित होकर अन्य नाटककारों ने नाटकों की निर्मिति का प्रयास किया। जिनमें प्रेमधन का "भारत सौभाग्य", प्रतापनारायण मिश्र का "हमीर हठ", श्रीनिवास दास का "संयोगिता स्वयंवर", बदरीनारायण चौधरी का "भारत-सौभाग्य", किशोरीलाल गोस्वामी का "प्रणयिनी प्रणय" आदि नाटक सामने आते हैं।

इन नाटकाकारों ने अपने नाटकों को राष्ट्रीयता एवं

सांस्कृतिकता का प्रसार माध्यम बनाया, जिसके माध्यम से उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर तीव्र प्रहार किए। इन नाटककारों ने इतिहास के प्रति रूचि निर्माण करते हुए, गद्य के लिए खड़ी बोली एवं पद्य के लिए ब्रजभाषा अपनायी किंतु इस भाषा का प्रयोग समकालीन रूप में ही रहा। इन युगीन नाटकों में पात्रों के चारित्रचित्रण का विकास अपेक्षतया नहीं हो पाया। इन नाटककारों की दृष्टि, पात्रों के चित्रण में आन्तरिक संघर्ष की ओर न रहकर, बाह्य सक्रीयता में ही अधिक रही। अत: भारतेन्दु युगीन नाटक प्रवृत्ति-गत विकास की दृष्टि से स्थूल ही रहा।

१.२ द्विवेदी युग :

भारतेन्दु युग के पश्चात द्विवेदी युग का आविर्भाव हुआ, जिसे "संक्रांति काल" भी कहा जाता है। भारतेन्दु युगीन नाटकों की तुलना में द्विवेदी युगीन नाटक जनजीवन से दूर रहे। क्योंकि इस समय देश में सांस्कृतिक, राजनीतिक आंदोलन की चेतना अत्यधिक प्रबल रही। उसका प्रभाव समकालीन नाट्यसाहित्य पर भी रहा। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी इस युग के प्रधान साहित्यकार रहे। आ. द्विवेदी तथा उनके समकक्ष नाटककारों ने अपने नाटकों में शिल्पविधी के स्तर पर संस्कार एवं सुधार के प्रयास किए।

भारतेन्दु के पश्चात इ.सन १९०१ से लेकर १९२० तक के काल में जो नाटक लिखे गए उनमें ऐतिहासिक, पौराणिक नाट्यनिर्मिति के साथ-साथ संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी से अनुदित नाटक भी अत्यधिक रहे। बंगला से द्विजेन्द्र-लाल राय, रविन्द्रनाथ तथा अंग्रेजी से शेक्सपिअर, संस्कृत से भवभूति आदि की रचनाओं के अनुवाद अधिक मात्रा में होते रहे, जिनमें लक्ष्मीनारायण पाण्डेय, लाला सीताराम, सत्यनारायण कविरत्न आदि का स्थान रहा। इस काल में मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गए। इस युग के नाटककारों ने पारसी नाटक कम्पनियों के लिए अपने नाटक लिखे। नारायणप्रसाद बेताबजी का स्थान इस

दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उन्होंने नाटकीय भाषा में उर्दू के स्थान पर हिंदी का प्रयोग किया। जिसके प्रभावस्वरूप राधेश्याम कथावाचक, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा एवं आगा हश्र काश्मिरी आदि नाटककारों ने पौराणिक, शृंगारप्रधान नाटकों की निर्मिति की, जो पारसी व्यवसायी रंगमंच के लिए लिखे थे, किंतु साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से इनका स्थान गौण रहा।

इस काल में सामाजिक, पौराणिक, संत चरित्रों को तथा प्रेमरसपूर्ण विषय वस्तु को चुनकर नाटकों की निर्मिति होती रही, जिनमें मिश्रबन्धुओं का "शिवाजी", वियोगी हरी का "प्रबुद्ध यामुने", अयोध्या प्रसाद उपाध्याय का "रुक्मिणी परिणय" आदि नाटक सामने आए। फिर भी मौलिकता की दृष्टि से इस युग में निराशाजनक स्थिति रही। इसके कारणों पर प्रकाश फैलाते हुए डा. शिवकुमार शर्मा लिखते हैं, ".... इस युग के नाटककारों को एक तो परम्परागत रंगमंच उपलब्ध नहीं हो सका और दूसरे, इस बीच लगातार मध्यवर्ग की वृद्धि के कारण लोक-जीवन से इनका सहज सम्बन्ध भी टूट गया। इस युग के लेखक आर्यसमाज की नैतिकता तथा गांधीजी की सात्त्विकता एवं आदर्शवादिता से अत्यन्त प्रभावित थे। समकालीन देशव्यापी सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलनों का भी इस युग पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। फलत: सुधारवाद इस युग के समूचे साहित्य का प्रधान स्वर था। ..... इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता के कारण मौलिक उद्भावनाओं के लिए कम अवकाश रह गया। अत: इस युग में नाटकों के अनुवादों की भरमार रही, मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गए। भारतेन्दु-युग में नाटक-साहित्य का विकास जिस तीव्रता से हुआ था, उसमें प्रसाद के आगमन से पूर्व तक कुछ भी उन्नति नहीं हुई।"[४]

अनुवादों की भरमार एवं रंजनवादी व्यावसायिक रंगमंच का बढता प्रयोग आदि स्थितियों के कारण द्विवेदी युग में नाटकों की मौलिकता कम होती गयी, इसीलिए इसे "पतन का काल" भी कहा जाता है।

१.३ जयशंकर प्रसाद युग :

हिंदी नाटक साहित्य के इतिहास में संक्रातिकाल या संधी काल के पश्चात जयशंकर प्रसाद युग नयी चेतना लेकर आया। यह काल हिंदी नाट्यसाहित्य में स्वर्णकाल के रूप में प्रतिष्ठित रहा। इस युग के नाटक की विशेषतायें इसप्रकार हैं।

१.३.१ गौरवशाली इतिहास का चित्रण :

जयशंकर प्रसादजी ने कई उच्च कोटी के ऐतिहासिक नाटक लिखे। इन नाटकों द्वारा उन्होंने वैदिक काल से लेकर सम्राट हर्षवर्धन तक के काल को पुनर्जीवित कर अपने समकालीन युगजीवन का निर्देशन किया। उनका "ध्रुवस्वामिनी" नाटक समसामयिक जटिल राजकीय परिस्थिति पर प्रकाश डालता है, तो "स्कन्दगुप्त" में आदर्श मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना मिलती है। उनके "राज्यश्री", "अजातशत्रु", "चन्द्रगुप्त" आदि नाटकों में क्रमश: हर्ष, बौद्ध और मौर्यकालीन गौरवशाली इतिहास की झाँकी मिलती है। प्रसाद के ये नाटक इस दृष्टि से विशेष मौलिक है, कि उन्होंने पारंपारिक इतिहास का चित्रण न कर उसे वर्तमान समय से जोड़ने की सफल कोशिश की।

१.३.२ उज्ज्वल सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति :

प्रसादकालीन राजकीय स्थिति पराधीनता, उदासीन मनोवृत्ति तथा उदयोन्मुख राष्ट्रीय स्वर से युक्त थी। प्रसाद ने युग की माँग के अनुसार ही सांस्कृतिक, राष्ट्रीय चेतना से युक्त नाटक लिखे और स्वत्वप्राप्ती के हेतु जागरण का मंत्र फूंका। भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों को सामने रखकर एकता का संदेश दिया। उनके "स्कन्दगुप्त", "चंन्द्रगुप्त" नाटक इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे। इनमें आपसी भेदभाव को मिटाकर देश-रक्षा एवं

उन्नति के लिए कृतिशील होने की प्रेरणा मिलती है।

१.३.३. प्रसाद के नाटकों की शिल्पविधी :

शिल्प की दृष्टि से प्रसाद युग नाटक साहित्य का क्रान्तीकारी युग है। इस युग में हिंदी नाटक ने शिल्प के स्तर पर एक निश्चित दिशा ग्रहण की। वह स्वतंत्र एवं स्थायी बना।

१.३.३.१ कथावस्तु :

प्रसाद के नाटकों के कथानक पौराणिक महाभारत काल से लेकर हर्षवर्धन तक के विस्तृत काल को प्रस्तुत करते हैं। विषयवस्तु की विविधता तथा इतिहास एवं पुराण कथाओं के माध्यम से युगीन समस्याओं की अभिव्यक्ति प्रसाद के नाटकों की मौलिक विशेषता रही। अत: भारतेन्दु युगीन नाटकों की तुलना में प्रसाद युगीन नाटक जनजीवन के अधिक निकट आए।

१.३.३.२ पात्र तथा चरित्रचित्रण :

चारित्रिक दृढता, प्राणवत्ता, सूक्ष्म अंतर्द्वन्द्व आदि प्रसाद के पात्रों की महती विशेषताएं रही हैं। ये पात्र अपनी वर्गीय विशेषताओं के साथ ही स्वतंत्र रूप से नाटक में प्रस्तुत होते हैं। जैसे चाणक्य, चन्द्रगुप्त, कल्याणी, स्कन्दगुप्त, देवसेना, विजया, अनंत देवी, भटार्क, ध्रुवस्वामिनी आदि। "उनकी चरित्रसृष्टि में भारतीय नाट्य परम्परा के रस और साधारणीकरण के साथ पाश्चात्य व्यक्तिवैचित्र्य का अद्भुत समन्वय मिलता है।"[५] प्रसाद के पात्र इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं, कि वे इतिहास, पुराण, समाज राजनिति आदि विविध क्षेत्र के होते हुए भी वर्तमान युगसमाज से जुडे हुए हैं।

१.३.३.३ कथोपकथन :

नाटकीस दृश्यों में प्रसाद के संवाद अधिक सजीव एवं प्रभावी बन पडे हैं। कथ्य को प्रवाही एवं गतिशील बनाने में वे सक्रीय रहे हैं। साथ ही वे पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को भी सफलता से उद्घाटित करते हैं। नाटक में कही कहीं पर संवाद एवं स्वगतकथन अपेक्षातया अधिक विस्तृत हो गए हैं। इस संदर्भ में डा. शांति मलिकजी का कथन दृष्टव्य है, " .... इसका कारण कहीं उनकी तरल भावुकता, कहीं दार्शनिकता, कहीं राष्ट्रीयता तथा कहीं उनकी तत्वनिरूपण की, आत्मचिंतन की और उपदेशात्मक प्रवृत्ति ही है।"[६]

१.३.३.४ भाषाशैली :

सजीव, प्रवाही, भावुक तथा साहित्यिकता से परिपूर्ण भाषा प्रसाद के नाटकों की खासीयत रही है। नाटकीय कथ्य एवं वातावरण के अनुसार उसमें तत्सम तथा तद्भव शब्दों की बहुलता है, जिससे कुछ आलोचक उसपर गम्भीरता, क्लिष्टता का आरोप लगाकर उसे अभिनेयता की दृष्टि से अनुचित मानते है। वास्तव में प्रसादजी पात्रानुकूल भाषा की अपेक्षा भावानुकुल भाषा के पक्षधर है, उन्होंने भाषा के एक निश्चित स्तर को अपनाया है। अत: उनकी भाषा में गम्भीरता, काव्यमयता, साहित्यिक गरिमा का होना स्वाभावीक ही लगता है।

१.३.३.५ उद्देश्य :

प्रसाद के नाटक महत् उद्देश्यों को लेकर चलते हैं। उनके नाटक गौरवशाली अतीत को चित्रित कर राष्ट्रीय एकता का संदेश देते हैं। इतिहास एवं संस्कृति की आदर्श स्थापना के द्वारा वे समसामयिक जटिल वर्तमान को उज्जवल भविष्य में परिवर्तीत करने की अमिट प्रेरणा देते हैं।

१.३.३.६ रंगशिल्प :

प्रसाद ने नाट्यशिल्प के सम्बन्ध में अभिनव प्रयोग किए। उन्होंने पाश्चात्य और भारतीय नाट्यतत्वों को मिलाकर हिंदी को नवीन, ठोस नाट्यशिल्प दिया। हिंदी के समसामयिक नाट्य समीक्षकों ने प्रसाद के नाटकों में बृहद आकार, साहित्यिक क्लिष्ट भाषा, लम्बे संवाद, गीतों की अधिकता, दृश्यविधान की कठिनता, आकस्मिक घटनाओं की उपस्थिति आदि दोषों को दिखाते हुए उसे अभिनेयता की दृष्टि से असफल माना है। वास्तव में समसामयिक रंगमंच प्रसाद के नाटकों के लिए अनुकूल नहीं था। वह अर्ध-विकसित था। खुद प्रसादजी की भी यहीं धारणा थी, कि नाटक के अनुकूल रंगमंच की निर्मिति होनी चाहिए, न कि रंगमंच के अनुसार नाटक की। यदि प्रसाद के नाटकों को उचित रंगनिर्देश तथा संशोधन के साथ मंचित किया जाए, तो प्रसाद के नाटक उपर्युक्त आरोपों से सर्वथा मुक्त हो सकते हैं।

१.३.४ प्रसाद के नाटकों की मौलिकता :

आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य में जयशंकर प्रसादजी का स्थान श्रेष्ठतम रहा है। भारतेन्दु युग में उदित ऐतिहासिक, प्रेमप्रधान, राष्ट्रीय नाटकों की परम्परा प्रसाद युग में आकर अधिक विकसित हुई। नाटक के माध्यम से इतिहास एवं प्रेम-रोमांस का मणिकांचन योग प्रसाद की नवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा की मौलिकता है। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य शैलियों को मिलाकर एक अभिनव सन्तुलित नाट्यशैली का सूत्रपात किया। पारसी थियेटरों के मायाजाल एवं सिनेमा के आकर्षण में फँसे हुए, समकालीन हिंदी भाषी दर्शकों को अभिरुचि संपन्न मौलिक नाटक दिए, जो हिंदी नाट्य साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है।

प्रसाद की नाट्यशैली से प्रभावित होकर कई लेखकों ने अपनी

सर्जनाएं प्रस्तुत की। बद्रीनाथ भट्टजी ने कई नाटक एवं प्रहसन लिखे, जिसमें "कुरुक्ष नदहन" (१९१२), "वेनचरित" (१९२१), पौराणिक नाटक है, तो "तुलसीदास" (१९१२), "दुर्गावती" (१९२५) तथा 'चंद्रगुप्त" (१९१५) ऐतिहासिक नाटक है। प्रहसन रचयिताओं में जी.पी. श्रीवास्तव प्रसाद युग के मुख्य रचनाकार है। श्रीवास्तवजी ने "दुमदार आदमी" (१९१७), "मदानी औरत" (१९२०), "कुर्सी मैन" (१९२३), "पत्र-पत्रिका सम्मेलन" (१९२४) आदि मौलिक प्रहसनों की निर्मिति की। सुदर्शन प्रसाद इस युग के सफल नाटककार रहे। उनका "दयानंद" और "सिंकदर" - ऐतिहासिक, "अंजना"- पौराणिक, "धूपछाँह" समस्याप्रधान तथा "ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट" हास्यात्मक रूपक है। माखनलाल चतुर्वेदी कृत "कृष्णार्जुन युध्द" (१९१८) यह एक ही नाटक मिलता है, जो अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के कारण हिंदी नाट्यसाहित्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाए हुए है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इस युग में नाटक संस्कृत के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त हुआ। भारतीय एवं पाश्चात्य पद्धति का सहज, स्वाभाविक सामंजस्य युगीन नाटकों की विशेषता रही। शिल्प के धरातल पर वह स्वाभावीक एवं स्थायी बना। इस युग में रंगमंच और साहित्य का मेल कराने का प्रयास एवं सजगता दिखाई देती है। विभिन्न सामाजिक और राष्ट्रीय आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसप्रकार, भारतेन्दु युग की अपेक्षा प्रसाद युग में नाट्य साहित्य का चरम विकास लक्षित होता है।

१.४ स्वतंत्रतापूर्वकालीन नाटक (१९३४ से १९४७ तक) :

जयशंकर प्रसाद युग के पश्चात हिंदी नाट्यसाहित्य नया तेवर लेकर उपस्थित हुआ। इस युग में नाट्यसाहित्य के सभी प्रयोगोंका विकसित रूप मिलता है। समृद्धता, विशालता एवं वैविध्यपूर्णता इस युग के नाटकों की विशेषता रही। प्रसाद की प्रेरणा एवं समकालीन जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति

इस युग के नाटकों की विशेषता रही।

शिल्पविधी की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण रहा। नाटक जन-साधारण के जीवन के निकट आया। वह प्रसादयुग की तुलना में अधिक प्रौढ एवं वास्तववादी बना। पाश्चात्य नाट्यशैली का गहरा प्रभाव एवं रंगमंचीय चेतना इस युग के नाटकों की प्रधानता रही। नाटक में गीतों के प्रयोग अपेक्षा-कृत कम हो गए तथा उसमें प्रयोगशील चेतना का विकास हुआ। शिल्पविधान में यथार्थ चित्रण एवं संकलन त्रय का महत्व बढ़ गया।

इस युग में एकांकी, अनेकांकी, रेडियो नाटक, गीतिनाट्य, संगीत नाटक आदि विविधतापूर्ण एवं नव तकनिकियों के माध्यम से नाटक विकास की ओर बढने लगा। पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंदवल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क, डा. राम कुमार वर्मा, डा. सत्येंद्र, वृन्दावनलाल वर्मा, डा. लक्ष्मीनारायण लाल आदि इस युग के महत्वपूर्ण नाटककार रहे।

विदेशी प्रभाव के फलस्वरूप इस युग के नाटक में वस्तुगत विशेषताएँ स्पष्टता से दिखाई देने लगी। पौराणिक अर्थात् मिथकीय नाटक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटक, समस्या नाटक इस युग में प्रधान रूप से लिखे जाने लगे।

१.४.१ पौराणिक नाटक :

बीसवी शति के इस बुद्धिवादी एवं समस्याप्रधान युग में भी पौराणिक नाटक अधिक मात्रा में लिखे गए। पुराणों के माध्यम से सम-सामकालीन जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति इस युग की मौलिक विशेषता रही। उदयशंकर भट्टजी इस धारा के सफल नाटककार रहे। उनके "विद्रोहिनी अम्बा", "सागरविजय" महत्वपूर्ण नाटक रहे। सेठ गोविंददासजी का "कर्तव्य" तो लक्ष्मीनारायण मिश्रजी का "नारद की वीणा" नाटक भी महत्वपूर्ण रहा।

१.४.२ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटक :

इस युग में प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना एवं इतिहास प्रेम की भावना से प्रेरित होकर विविध नाटककारों ने इतिहास संस्कृतिमूलक नाटकों की निर्मिति की। मौर्य, गुप्तकालीन इतिहास को छोड़कर रजपूत और मुगल-कालीन इतिहास का चित्रण इस युग में रहा। राष्ट्रीय चेतना, हिन्दु-मुस्लिम एकता, बलिदान भावना का चित्रण युगीन नाटकों की मौलिक विशेषाता रही। इतिहास के गवाक्ष से यथार्थ को परखने की दृष्टि इस युग में सक्रीय रही।

इस युग में प्रसाद के पश्चात ऐतिहासिक नाटककार के रूप में डा. हरिकृष्ण प्रेमीजी विशेष सफल रहे। प्रेमीजी के "रक्षाबंधन", शिव-साधना, "प्रतिशोध", "स्वप्नभंग" आदि नाटक विशेष सफल रहे। डा.लक्ष्मी-नारायण मिश्रजी लिखित "अशोक" और "गरूडध्वज" अपेक्षतया प्रौढ एवं सशक्त नाटक हैं। सेठ गोविंददासजी लिखित "हर्ष", "शशिगुप्त", "कुलीनता" तथा उदयशंकर भट्टजी लिखित "विक्रमादित्य", "सिंधपतन" आदि नाटक भी विशेष महत्त्वपूर्ण रहे। उपेंद्रनाथ अश्क का "जय-पराजय" भी विशेष महत्त्वपूर्ण नाटक रहा। नाटयकाल के आधुनिक युग में इन नाटकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

१.४.३ समस्याप्रधान नाटक :

प्रसादयुग की तुलना में इस युग के नाटक में मुलभूत परिवर्तन हुए। रोमान्स एवं भावुकता की जगह यथार्थवादी सर्जना को महत्त्व मिला। आंतरराष्ट्रीय प्रभावस्वरूप समसामयिक सामाजिक चेतना एवं विभिन्न वर्तमान समस्याओं का चित्रण बौद्धिकता के बल पर वास्तव दृष्टि से किया जाने लगा। डा. लक्ष्मीनारायण मिश्र का स्थान इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

उन्होंने प्रधानत: नारी समस्या तथा यौन समस्याओं को अपने नाटकों द्वारा प्रस्तुत किया है। 'संन्यासी', 'राक्षस का मंदिर', 'सिन्दुर की होली', 'मुक्ति का रहस्य' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण नाटक रहे।

उपेंद्रनाथ अश्क के 'अंजो दीदी', 'अलग अलग रास्ते', 'उड़ान' आदि नाटक वर्तमान समस्याओं पर आधारित है। सुशिक्षित नारी के अंतर्मन की झाँकी इनके नाटकों में मिलती है, जो बाह्य रूप-रंग के दिखावे में घर के भीतरी सौंदर्य से उदासीन है। सेठ गोविंददासजी के नाटकों में राजनीतिक समस्याओं का चित्रण एवं सामाजिक विचारधारा की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। वे स्वयं गांधीवादी रहे। उनके 'प्रकाश', 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य', 'सेवापथ' आदि नाटक इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे। उदयशंकर भट्ट का 'कमला' नाटक समसामयिक नारी वेदना को लेकर चलता है। तो पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा', 'अपराधी' तथा 'साधना' में वर्तमान जीवन के बदलते स्वरूप एवं उसके परिणामों पर प्रकाश फैलाया गया है।

प्रसाद के 'कल्पालय' से प्रेरणा पाकर इस युग में भी कुछ गीतिनाट्य लिखे गए। हरिकृष्ण प्रेमी का 'स्वर्ण-विधान' अहिंसा-दर्शन एवं राष्ट्रीय भाव को लेकर चलता है। इसका शिल्पविधान गीतिनाट्य का है, किंतु आत्मा संवादात्मक काव्य की रही है। उदयशंकर भट्टजी के 'मत्स्यगंधा', 'विश्व-मित्र' और 'राधा' ये तीनों ही नाटक कलापूर्ण एवं गीतिनाट्य के शिल्पविधान की दृष्टि से पूर्णतया विकसित हैं।

इस प्रकार स्वतंत्रतापूर्व काल के नाटकों में शिल्प एवं कथ्य को लेकर मूलभूत परिवर्तन हुए। कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के हेतु नए प्रतीक, उपमान बिम्बयोजना, फ्लैश-बैक पद्धति, चेतना प्रवाह आदि विविध नाट्यशैलियों का प्रयोग किया गया। रंगोन्मुखता की प्रवृत्ति को अधिक बढावा मिला। इसीके परिणामस्वरूप एकांकी विधा विकसित हुई। बाद में इस युग का नाटक एकांकी नाटक, छाया नाटक, पार्श्वनाटक, प्रतीक नाटक, रेडियो नाटक आदि

रूपों में विकसित हुआ। वास्तव में नवयुगीन नाटकों की पृष्ठभूमि के आधार पर ही साठोत्तरी हिंदी नाटकों का शिल्पविधान विकसित हुआ, परिणाम स्वरूप हिंदी नाटक साहित्य विकास की ओर अग्रेसित हुआ।

१.५ छठे दशक का नाटक :

इ. सन - १९४७, भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ती का वर्ष, आधुनिक हिंदी-नाट्यसाहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्यों कि इसी वर्ष से आधुनिक हिंदी नाटक, वस्तु, शिल्प, रंगमंच, प्रयोगधर्मिता आदि सभी दृष्टि से नयी जमीन तोडने लगा। नाटक में रंगमंचीय संभावनाओं को प्रधानता देकर विभिन्न प्रवृत्तियाँ नजर आने लगी, जैसे-मानवतावादी, आदर्श वादी, सुधारवादी समाजवादी, साम्यवादी, यथार्थवादी, बुद्धिवादी, व्यक्तिवादी आदि। साथ ही तत्कालीन सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं सामयिक परिस्थितियों ने विभिन्न वादों को जन्म दिया, जैसे-मनोविश्लेषणावाद, यौनवाद, प्रकृतिवाद, रूपविधानवाद आदि। इन्ही समसामयिक परिस्थितियों प्रवृत्तियों एवं वादों की प्रेरणा एवं प्रभाव से नाटक की भावभूमि में व्यापकता आयी, एवं अभिनव रूपविधानों का विकास हुआ तथा शिल्पविधि में भी क्रांति कारी परिवर्तन लक्षित होने लगे।

छठे युग के नाटक का सम्पूर्ण परिचय एवं उनकी मौलिक विशेषताओं को परखने के लिए, उसे मुख्यतया तीन स्थित्यंतरों में विभाजित करना सुविधाजनक होगा।

१) छठे दशक के नाटक की प्रवृत्तिगत विशेषताएं।
२) छठे दशक के नाटक में शिल्पविधि का विकास।
३) छठे दशक के नाटक में रंगमंचीय चेतना।

१.५.१ प्रवृत्ति के आधार पर छठे दशक का नाटक :

छठे दशक में समसामयिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप

विभिन्न प्रवृत्तियों के नाटकों की निर्मिति हुई। ऐतिहासिक, पौराणिक कथा-वस्तु लेकर समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति सफलता से की जाने लगी। ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों के पात्रों की यह विशेषता है, कि वे तत्कालिन संदर्भ के साथ ही, वर्तमान युगबोध को व्यक्त करते हैं।

ऐतिहासिक नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंददास तथा मोहन राकेश एवं जगदिशचंद्र माथुरजी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। प्रेमीजी के नाटकोकी कथावस्तु मुगलकालीन इतिहास से संबंधित है। इस दृष्टि से उनके "रक्षाबंधन" तथा "शिवसाधना" प्रसिध्द नाटक है। उपेन्द्रनाथ अश्क का "जय-पराजय" राजपूती इतिहास को उजागर करता है। सेठ गोविंददास का "हर्ष" विशेष लोकप्रिय रहा। इसकी कथा-वस्तु "उडीसा" के ध्वस्त सूर्यमंदिर के इतिहास पर प्रकाश फैलाती है। मोहन राकेश का "आषाढ का एक दिन" ऐतिहासिक कथ्य के साथ वर्तमान युगबोध से पूरी तरह से जुड़ा हुआ है। यह नाटक कथ्य, शिल्प, रंगमंच आदि सभी दृष्टि से विशेष लोकप्रिय रहा। लक्ष्मीनारायण मिश्र का "विवस्तां की लहरें" भी एक श्रेष्ठ नाटक रहा है। डा.धर्मवीर भारती का "अंधायुग" एक गीतिनाट्य है और महाभारत की युद्ध कथा को पद्य शैली में सफलता से अंकित करता है। वर्तमान युगबोध की अभिव्यक्ति एवं कथागायकों की योजना इसमें अनूठी बन पड़ी है।

पौराणिक नाटक भी पौराणिक कथ्य के साथ-साथ वर्तमान युगबोध से जुडे हुए हैं। पौराणिक नाटककारों में गोविंद वल्लभ पंत का "वरमाला" नाटक मार्कण्डेय पुराण से सम्बधित है। सुदर्शन का "ययाति" तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र का "चक्रव्यूह" महत्वपूर्ण नाटक रहे। उदयशंकर भट्ट इस दशक के प्रमुख पौराणिक नाटककार रहे। उनके "अम्बा" और "सागर-विजय" इस धारा की प्रधान एवं महत्वपूर्ण कृतियाँ रही।

इब्सेन एवं शॉ से प्रभावित होकर समस्यामूलक नाटकों की निर्मिति भी इस युग में होती रही। स्वतंत्रता के बाद देशकी बदलती हुअी सामाजिक, राजनीतिक चेतना, आर्थिक तनावों के बीच एवं नितनूतन दैनंदिन समस्याओं के बीच व्यतीत व्यक्ति का जीवन छठे दशक के नाटक में मूर्तिमान हो उठा है। व्यक्ती की समस्याग्रस्त यथार्थ जीवन की सशक्त, स्वाभाविक अभिव्यक्ति इस दशक के नाटक की मौलिक विशेषता है।

कभी एक समस्या को लेकर तो कभी विभिन्न समस्याओं को लेकर नाटक लिखने की प्रवृत्ति इस दशक में बढती गयी। इस वर्ग के कुछ उल्लेखनीय नाटक इसप्रकार रहे। डा. लक्ष्मीनारायण मिश्र इस वर्ग के महत्त्व-पूर्ण नाटककार रहे। मिश्रजी ने सम्बन्धों प्राय: नारी समस्या एवं स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक स्तर पर कलात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। "राक्षस का मंदिर", "मुक्ति का रहस्य", "गुड़िया का घर", "सिंदुर की होली" आदि में इस विचारधारा के दर्शन होते है। उपेंद्रनाथ अश्क इस वर्ग के दूसरे महत्वपूर्ण नाटककार रहे। उन्होंने अपने नाटकों द्वारा सामाजिक, राज-नीतिक तथा वर्तमान समसामयिक समस्याओं को अपने नाटकों द्वारा अभिव्यक्त किया। इस दृष्टि से उनके "स्वर्ग की झलक", "छठा बेटा", "अंजो दीदी", "जय-पराजय", "पैंतरे" : आदि नाटक उल्लेखनीय बन पडे है। डा.लक्ष्मीनारायण लाल का "मादा कैक्टस", "अंधाकुआं", आदि नाटकों में वर्तमान सामाजिक समस्याओं को बारीकी से उठाया गया है, तो "रात रानी" में आदर्श रूप की अभिव्यक्ति हुअी है। विष्णु प्रभाकर का "डाक्टर" सुशिक्षिता नारी के अंतर्द्वन्द्व को लेकर चलता है।

इसप्रकार छठे दशक में विभिन्न प्रवृत्तियों एवं कथ्य को लेकर नाटकों की निर्मिति होती रही। वर्तमान युगबोध की सशक्त अभिव्यक्ति इस दशक के नाटकों की सर्वोत्तम विशेषता रही।

१.५.२ छठे दशक के नाटक में शिल्पविधि का विकास :

इ.सन १९४७ के पश्चात ही हिंदी आधुनिक नाट्यलेखन का सूत्रपात हुआ। इस दशक के नाटक में वर्गगत एवं प्रवृत्तिगत विशेषताओं के साथ ही शिल्पविधी में भी क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देने लगे। कथ्य, शिल्प भाषा, शैली आदि दृष्टि से छठे दशक का नाटक नया मोड लेने लगा।

१.५.२.१ कथावस्तु :

इस दशक में कथावस्तु की दृष्टि से उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देते हैं। वैविध्यपूर्ण एवं समसामयिक कथ्य इस दशक के नाटक की विशेषता रही। ऐतिहासिक नाटकों में आदर्श घटनाओं की अभिव्यक्ति, एवं राजपूतकालीन कथ्य को चुनकर विविध समस्याओं की अभिव्यक्ति सफलता से की जाने लगी। पौराणिक नाटकों में भी बुद्धिगम्य स्वाभाविक घटनाओं को ही प्रश्रय दिया गया। 'अम्बा', 'सगर-विजय' नाटक इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इस दशक में समाज के विविध अंगो से कथ्य ग्रहण कर सामाजिक नाटकों की निर्मिति अधिक मात्रा में होती रही। डा. रामजन्म शर्मा के मतानुसार, ".... सामाजिक नाटकों की कथावस्तु का आधार मूलत: मनुष्य के दैनिक जीवन का चित्रण करना है। साथ ही समाज में व्याप्त बुराईयों का रहस्योद्घाटन, उसका प्रभाव और निराकरण इन नाटकों का उद्देश्य है।"[७]

इसप्रकार इस दशक में कथावस्तु की दृष्टि से मौलिक परिवर्तन दिखाई देते हैं।

१.५.२.२ पात्रयोजना तथा चरित्रचित्रण :

पात्र एवं चरित्रचित्रण की दृष्टि से इस दशक में लक्षणीय परिवर्तन हुए। पौराणिक नाटकों में पूर्व परम्परानुसार केवल 'राम' और

'कृष्ण' को न अपनाकर 'अम्बा', 'बाहुपुत्र', 'सागर','कर्ण','उर्मिला' आदि विभिन्न पात्रों को अपनाया गया। इन पात्रों को अतिमानवीय रूप में न अपनाकर मानव के रूप में ही प्रतिष्ठित किया गया। ऐतिहासिक नाटकों के पात्र देशभक्ति की बलवति चेतना लेकर प्रस्तुत होते हैं। उनमें कुछ पात्र शुद्ध ऐतिहासिक, तो कुछ काल्पनिक भी है। इनमें से कुछ पात्र राजनीति से सम्बन्धित एवं उच्च कुलोत्पन्न हैं। सामाजिक नाटकों के पात्र विविध वर्गों से एवं विविध क्षेत्रों से चुने गए हैं, जैसे - कवि, सम्पादक,वकील प्रोफैसर, मैजिस्ट्रेट, नेता, जमिंदार, जुलाहा, सिपाही, थानेदार, नौकर आदि। इन नाटकों में प्रधान पात्र शिक्षित एवं गौण पात्र मजदूर रूप में आते हैं। ये सभी पात्र यथार्थवादी हैं। इनमें आदर्शवादी पात्र कम दिखाई देते हैं, तथा पात्रों की संख्या पहले की अपेक्षा कम हो गयी है।

इस दशक के पात्रों के बाहय व्यक्तित्व के साथ-साथ उनका आंतरिक चित्रण सुगमता से हुआ है। कई जगह उनके अंतर्द्वन्द्व बड़े अनूठे हो उठे हैं। ये पात्र भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों के बीच से गुजरते हैं। उनका चित्रण इस दशक के नाटकों में अत्यंत बारीकी से एवं स्वाभाविकता से हुआ है।

१.५.२.३ कथोपकथन :

इस दशक के नाटकों के संवाद विशेष मँजे हुए, आकर्षक और छोटे हैं। इससे पहले के संवाद प्राय: लम्बे रहा करते थे। स्वातंत्र्योत्तर काल में उनकी अनावश्यक लम्बाई अपेक्षाकृत कम हो गयी हैं। साथ ही संवादो में स्वगतकथनों का प्रयोग न के बराबर है। मिश्रजी ने तो इन्हें त्याग दिया है और डा. वृंदावनलाल वर्माजी ने अपने अधिकांश नाटकों में स्वगतकथनों को वर्जित ही रखा है। इस दशक में स्वगतकथन की अस्वाभाविकता प्राय: नष्ट होती दिखाई देती है, जो नाट्यरूप की प्रगति की दृष्टि से गर्व की बात है।

१.५.२.४ भाषा :

आलोच्य नाटकों की भाषा खड़ी बोली ही रही। उसमें पात्रानुकूलता परिस्थितिसापेक्षता एवं युगबोध की सक्षमता लक्षणीय है। ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सामाजिक सभी नाटकों में भाषा की दृष्टि से युगसापेक्षता का खयाल रखा गया है। अधिकतर यथार्थवादी भाषा का प्रयोग किया गया है। महानगरीय यथार्थ को व्यक्त करने के लिए स्थान-स्थान पर अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

१.५.२.५ वातावरण :

कथ्य के अनुसार देशकाल वातावरण की योजना छठे दशक के नाटक की अपूर्व सफलता है ; क्योंकि वातावरण की अनुकूलता पर ही अधिकांशत: नाटक की सफलता अवलम्बित रहती है। वातावरण की दृष्टि से इस दशक का नाटक वस्तुगर्भित सत्य एवं सांस्कृतिक संदेश अभिव्यक्त करने में सफल रहा है। यथार्थ युगबोध की सशक्त अभिव्यक्ति में वातावरण की सफलता कार्यरत रही है।

इतिहास, पुराण के माध्यम से आधुनिक समस्याओं की सशक्त अभिव्यक्ति में नाटकीय वातावरण अत्यधिक सक्रीय रहा है। इस दशक का नाटक साम्प्रदायिकता का उन्माद छोड़कर आपसी भेदभाव मिटाने की एवं क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है। इस दशक के सामाजिक नाटकों की समस्याएँ भारत के सभी वर्गों की समस्याएँ हैं। इनमें वर्तमान युग की झाँकी मिलती है। इस दशक का नाटक वर्तमान राष्ट्रीयता एवं वैचारिक पक्ष की प्रधानता के साथ-साथ, भावनात्मक गहराई से युक्त है। प्राय: सभी नाटकों के नाट्यशिल्प स्वाभाविक एवं सरल है।

१.५.३ छठे दशक के नाटक में रंगमंचीय चेतना :

१.५.३ छठे दशक के नाटक में रंगमंचीय चेतना :

इ.सन १९४७ के पश्चात ही हिंदी नाट्यसाहित्य में रंगमंच को लेकर अभिनव प्रयोगों का सूत्रपात हुआ। रंगमंच को दृष्टि में रखकर ही नाटकों में आवश्यक रंगसंकेत दिए जाने लगे। अभिनेयता की सुविधा की दृष्टि से नाटक में दृश्ययोजना, अंकविधान, नेपथ्य, मंचसज्जा में मौलिक परिवर्तन एवं सुझाव इस दशक के नाटक की मौलिक विशेषता रही। स्वतंत्रता-पूर्व काल में नाटक में स्थित अभिनय एवं मंचसज्जा की कठिणाईयों को इस दशक में अधिक सुगम एवं सरल बनाने की प्रवृत्ति बलवति रही।

अंकविधान एवं दृश्ययोजना की दृष्टि से इस दशक में, नाटक में मौलिक परिवर्तन हुए। अंकों की संख्या कम कर दी गयी। साथ ही अंको का दृश्यों में पुनर्विभाजन तथा दृश्यों का अंको में उपविभाजन नहीं हुआ है। डा. लक्ष्मीनारायण लाल एवं सेठ गोविंददास के नाटक इसके प्रमाण है। सामान्यत: नाटक में लघुदृश्य प्रस्तुति को बढ़ावा मिला।

प्राचीन नाटकों की नांदी, प्रस्तावना, भरतवाक्य लिखने की परम्परा इस दशक में लुप्त होती गयी। नाटक में गीत-नृत्य के प्रयोग पहले की अपेक्षा कम होने लगे। अभिनेयता की दृष्टि से इस दशक का नाटक लक्षणीय रहा। इस संदर्भ में डा. चन्दुलाल दुबेजी का मत दृष्टव्य है,
" ..... पहले के जैसे अब दृश्यों का बाहुल्य नहीं रहता। आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ाकर दृश्यों की रचना भी कर सकते हैं। .... आजकल अभिनय संबन्धी काफी संकेत भी दिए जाते हैं।[८]...

इस दशक के यथार्थवादी नाटकों में रंगमंच और अभिनय की दृष्टि से विशेष स्वाभाविकता एव सरलता दिखाई देती है। मंचसज्जा की दृष्टि से इस दशक का नाटक लक्षणीय रहा है। मंचीय सज्जा के लिए विशेष सूचनाएँ डा. लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में दिखाई देती हैं। रंगसंकेत की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। अभिनेयता एवं मंचीयता

की दृष्टि से डा. शंकर शेष के नाटक बहुआयामी हैं। उनका हर नाटक रंगमंच के लिए एक अलग प्रयोग है। अभिनेयता की दृष्टि से इस दशक के नाटकों में छोटे-छोटे संकेत भी दिए गए हैं, जिनमें सेठ गोविंददास, डा. मिश्र तथा अश्क के नाटक महत्त्वपूर्ण हैं।

इसप्रकार छठे दशक का नाटक मंचीकरण एवं अभिनेयता दोनों ही दृष्टियों से मौलिक रहा है। रंगमंचीय चेतना इस दशक के नाटक की उल्लेखनीय विशेषता रही। इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर काल में डा. शंकर शेष का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है।

१.६ सातवें तथा आठवें दशक का नाटक :

हिंदी नाट्यसाहित्य के विकासक्रम में साठोत्तरी नाटक अपनी विशेष भूमिका निभाता है। यद्यपि यह सत्य है कि प्रसादयुग से ही हिंदी नाटक नयी जमीन तोडने लगा था, आगे चलकर स्वातंत्र्योत्तर काल में वह शिल्प एवं रंगमंच की दृष्टि से भी अधिक विकसित हुआ, परंतु इ.सन १९६० के बाद हिंदी नाटक शिल्प एवं रंगमंच की दृष्टि से अधिक मौलिक बन गया। उसमें विषयवस्तु की विविधता, यथार्थबोध की तीव्रता, प्रयोगधर्मिता एवं सजग अभिनेयतात्मकता के गुणों का विकास हो गया। परम्परा और आधुनिकता का अद्भुत सामंजस्य एवं यथार्थ समस्याओं के साथ रोजमर्रा जिंदगी के स्वरूप का उद्घाटन साठोत्तरी नाटक की उल्लेखनीय विशेषता रही। साठोत्तरी नाटक मनोरंजनवादी तेवर से हटकर बौद्धिकता के धरातल पर सफर करने लगा। इस समय में विभिन्न प्रकार के नाटक लिखे गए जिनमें व्यक्तिसापेक्षता प्रधान रही। जैसे-ऐतिहासिक, पौराणिक, यथार्थवादी, मनोविज्ञानप्रधान आदि नाटकों की निर्मिति अधिक मात्रा में होती रही।

१.६.१ साठोत्तरी नाटकोंकी शिल्पविधि का तात्त्विक विवेचन :

साठोत्तरी नाटकों में शिल्प की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण

परिवर्तन हुए। तत्त्वों के आधार पर साठोत्तरी नाटकों की विशेषताएँ इसप्रकार हैं।

१.६.१.१ कथावस्तु :

व्यक्तिवादिता एंव यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति साठोत्तरी नाटक की मूल चेतना रही। इस समय इतिहास, पुराण, समाज, मनोविज्ञान, समसामयिक चेतना, युद्ध, प्रेम, विवाह, सैक्स आदि विभिन्न विषयवस्तु को लेकर नाटकों की निर्मिति होती रही।

इन नाटककारों ने वर्तमान युग के राजकीय और सामाजिक क्षेत्र में निर्मित विसंगति का मार्मिक चित्रण किया है, जैसे-मोहन राकेश का 'लहरों के राजहंस', डा. रामकुमार वर्मा का 'जौहर की ज्योति', रमेश बक्षी का 'कसे हुए तार' तथा मणि मधुकर का 'इकतारे की आँख' आदि नाटक इस दृष्टि से उल्लेखनीय रहे। साथ ही पुराण के माध्यम से नारी चेतना, वर्तमान राजनीति का स्वरूप, प्रशासनिक तंत्र, नैतिकता, गांधीवाद आदि आधुनिक मूल्यों का उद्घाटन भी सफलता से हुआ, जिसमें डा.लाल का 'यक्षप्रश्न', 'सूर्यमुख', डा नरेंद्र कोहली का 'शम्बुक की हत्या', मणि मधुकर का 'रस गन्धर्व" डा.लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'गंगादान' डा.शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य', 'कोमल गांधार' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय रहे।

मानवीय सम्बन्धों की शिथिलता, यंत्रयुग से अभिशप्त मानवी जीवन की त्रासदी, उससे उत्पन्न, बेरोजगारी, पूँजीवाद, आर्थिक विषमता आदि विभिन्न समस्याओं को साठोत्तरी यथार्थवादी नाटकों ने सशक्तता से अभिव्यक्त किया है। इस वर्ग के उल्लेखनीय नाटक इसप्रकार हैं। बृज मोहन का साह का 'त्रिशंकु', डा लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'करफ्यू', डा.शंकर शेष कृत "घरौंदा", 'रक्तबीज', 'पोस्टर', 'फंदी', डा. लक्ष्मीनारायण लाल का 'कलंकी' मोहन राकेश का 'आधे-अधूरे", रमेश बक्षी का 'देवयानी का कहना है'

मुद्राराक्षस का 'योर्स फेथफुली' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय रहे।

नाटक चाहे ऐतिहासिक हो, पौराणिक हो अथवा प्रतिकात्मक उसमें समसामयिक युगबोध प्रधान रहा हैं। साठोत्तरी नाटक कथानक की दृष्टि से वर्तमान जीवन के हर क्षेत्र एवं अनुभव को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम हैं।

१.६.१.२ पात्र तथा चरित्रचित्रण :

पात्र तथा चरित्रचित्रण की दृष्टि से इस समय के नाटक में मौलिक परिवर्तन हुए। चरित्रचित्रण का पारम्परिक रूप समाप्त होकर उसमें युगसापेक्षता आ गयी। उसमें समाजसापेक्षता के स्थान पर व्यक्तिसापेक्षता प्रतिष्ठित हो गयी। परिवेश एवं परिस्थिति के अनुरूप सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के साथ पात्रों के चरित्रगत विकास पर बल दिया जाने लगा।

प्राचीन नाटक के नायक में महानता एवं आदर्शों की स्थापना की जाती थी, किंतु वर्तमान नायक में सामान्यतया मानवीय दुर्बलताएँ, समसामयिक समस्याओं से ग्रस्त, पीड़ित स्थिति का बोध किया जाने लगा। इसीप्रकार की चरित्रयोजना मोहन राकेश, डा. धर्मवीर भारती और विपिन अग्रवाल के पात्रों में मिलती है। समसामयिक युग की समान मानसिकता तथा समान समस्याओं को दर्शाने हेतु नाटक में पात्रों को नाम न देने की तथा एक ही अभिनेता द्वारा अधिक भूमिकाएँ निभाने की पद्धति निर्माण हुई। इसके सशक्त दर्शन मोहन राकेश के 'आधे अधुरे', लक्ष्मीकांत वर्मा के 'रोशनी एक नदी है।' तथा डा. शंकर शेष के 'रक्तबीज', 'फंदी' 'पोस्टर' आदि नाटकों में होते हैं। पात्रों के अंतर्द्वन्द्व को सफलता से अभिव्यक्त करने में इस समय का नाटक सफल रहा, जिसमें मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल, हमीदुल्ला, सत्यव्रत सिन्हा, बृजमोहन शाह, डा.शंकर शेष आदि

महत्त्वपूर्ण रहे।

१.६.१.३ कथोपकथन :

साठोत्तरी नाटकों में इस दृष्टि से नाटककारों की अपनी मौलिकता दिखाई देती है। इस दृष्टि से डा. शंकर शेष, मोहन राकेश, डा.लाल, डा. मिश्र, नरेश मेहता, डा. माथुर आदि का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है।

डा. शंकर शेष के संवाद कथ्य के अनुकूल तथा पात्र एवं परिस्थिति सापेक्ष हैं। उसमें स्वाभाविकता, मार्मिकता, एवं विविधता परिलक्षित होती है। रंगमंचियता की तरह उनके संवाद भी अपनी मौलिकता साबित करते हैं। मोहन राकेश के संवादों में काव्यात्मक लय एवं जीवन की व्यापकता दृष्टिगत होती है। डा. लाल के रोमांटिक संवाद बहुत सुंदर बन पडे है। विष्णु प्रभाकरजी के संवाद मनोविज्ञान के द्वारा पात्रों के मानसिक संघर्ष को सफलता से प्रस्तुत करते हैं। कहीं पर लम्बे स्वगत का भी प्रयोग किया गया है। डा. लक्ष्मीनारायण मिश्रजी के संवादों का आधार तार्किकता है, जिसमें पाश्चात्य पद्धति का प्रयोग भी किया गया है। उपेंद्रनाथ अश्क के संवाद तीक्ष्णता, ताजगी एवं चुस्ती से युक्त हैं। निश्चित गति एवं परिस्थिति सापेक्षता उनके संवादों की अनोखी विशेषता है, जिसमें उनकी रंगमंचीय दृष्टि के दर्शन होते हैं।

१.६.१.४ भाषाशैली :

साठोत्तरी नाटकों में हिंदी नाटक की भाषिक संरचना को वास्तव में नयी दिशा मिली। उसमें सहज अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण की व्यापक क्षमता का विकास लक्षित होने लगा। भाषा की इस नवीन शक्ति का प्रयोग सर्वप्रथम मोहन राकेश के नाटकों में मिलता है। उनके 'आधे-अधुरे' नाटक की

भाषा में सजीवता एवं अनोखा आकर्षण है।

युगीन नाटकों में प्रसादयुगीन भाषा की क्लिष्टता कम करने का प्रयास किया गया और उसके तार्किक रूप को प्रधानता दी गयी। जिसमें डा. लक्ष्मीनारायण मिश्रजी प्रधान है तो, डा.जगदिशचंद्र माथुर, मोहन राकेश की भाषा में प्रसाद परम्परा का निर्वाह कुछ मात्रा में अनुभव होता है। डा. लक्ष्मीनारायण लाल और उपेंद्रनाथ अश्कजी ने 'आधुनिक कथ्य' के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है।

साठोत्तरी नाटकीय भाषा में समकालीन जीवन के तनाव को पकडने की शक्ति अधिक है। मणि मधुकर ने 'रसगंधर्व', 'बुलबुल सराय' और 'दुलारीबाई' में भाषा के नवीनतेर बंधो का उपस्थापन किया है। वास्तव में साठोत्तरी नाटकों में प्रयोगक्षम भाषा का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ। ऐसे प्रयास डा. शंकर शेष के नाटकों में नवीनता से लक्षित होते हैं। 'पोस्टर', 'अरे मायावी सरोवर', 'रक्तबीज', 'कोमल गांधार', 'एक और द्रोणाचार्य' आदि में कथ्य के अनुसार भाषा के विविध और सशक्त प्रयोग मिलते हैं। मुद्राराक्षस की नाट्यभाषा सशक्त है, जो अनुभूति की तीव्रता सजीव करती है, तो नरेंद्र कोहली के 'शम्बुक की हत्या' और शरद जोशी के 'दो व्यंग्य' नाटक में व्यंग्यशैली का प्रयोग हुआ है।

इस युग में विभिन्न नाट्यशैलियों का भी प्रयोग हुआ। जैसे लोकनाट्यशैली, कीर्तनशैली, व्यंग्यशैली, यथार्थशैली आदि विभिन्न शैलियों का सफल निर्वाह साठोत्तरी नाटकों में हुआ है।

१.६.१.५ उद्देश्य :

हर कृति एक सोद्देश्य रचना होती है। नाटककार सम-सामयिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करता है, और उसे एक निश्चित संविधान में बाँध देता है। साठोत्तरी हिंदी

नाटक, नाटककार के इसी दायित्व का वहन करते हैं।

आधुनिक नाटकों में वर्तमान मनुष्य के विभिन्न रूप, द्वन्द्वात्मक मानसिक स्थिति को उभारने के सफल प्रयास हुए है। जिसमें मोहन राकेश डा. शंकर शेष, सुरेन्द्र वर्मा, डा. लक्ष्मीनारायण लाल, हमीदुल्ला, सत्यव्रत सिन्हा और बृजमोहन शाह सफल रहे है। इनके नाटकों में वर्तमान मनुष्य का अंतर्द्वन्द्व बडी सफलता से चित्रित हुआ है। साठोत्तरी नाटकों में वर्तमान विसंगति से युक्त परिवेश और राजनीतिप्रधान युग से सम्बन्ध सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। पूँजीवाद और सत्ता की भ्रष्ट नीति ने सामाजिक जीवन से व्यक्तिगत जीवन तक स्वार्थ, अपसरवाद और मूल्यहीन आचरण का प्रसार कर दमघोंट स्थिति उत्पन्न की है। वर्तमान नाटकों में युग के इसी विसंगत परिवेश के प्रति दर्शकों को सचेत करने की चेतना तीव्रता से लक्षित होती है।

वस्तुत: स्वातंत्र्योत्तर साठोत्तरी नाटकों में सामयिक परिवेश एवं युगबोध के प्रति सजग चेतना दिखाई देती है।

१.६.१.६ रंगमंचीयता :

साठोत्तरी नाटको का रंगमंच यथार्थवादी रहा। परिवर्तनशीलता इस युग के नाटक की मौलिक विशेषता रही, जिसमें मंचन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होते रहे। प्रायोगिक रंगमंच पर वातावरण का निर्माण विकसित प्रकाशयोजना, ध्वनिप्रयोग एवं सांकेतिक प्रयोग के कारण इस युग की नाटक प्रस्तुति रही। मुक्ताकाशी रंगमंच के प्रयोग भी लोकजीवन के संदर्भ में विशेष सफल रहे। बाक्स आफिस में बंधे रंगमंच, प्रतिकात्मक रंगमंच आदि के रूप में हिंदी का वर्तमान रंगमंच काफी सफल रहा।

इन साठोत्तरी नाटकों में रंगमंच की दृष्टि से विशेष परिवर्तन दिखाई देते है। इन नाटकों का मंचन पहले हुआ और प्रकाशन बाद

में, जिसमें यथार्थ आधुनिकता बोध एवं मंचीय अभिनेयता पर विशेष बल दिया गया। रंगमंच की दृष्टि से इस समय में कुछ नाटक विशेष लोकप्रिय रहे, जिसमें शंकर शेष के नाटक "एक और द्रोणाचार्य" और "फंटी" अपनी मंचीय विशेषता एवं नवीनता के कारण विशेष सफल रहे। मोहन राकेश का "आधे-अधूरे", ज्ञानदेव अग्निहोत्री का "नेफा की एक शाम", "शातुरमुर्ग", सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का "बकरी", लक्ष्मीनारायण लाल का "मिस्टर अभिमन्यु", सुरेन्द्र वर्मा का "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक", "दौप्रदी", मणि मधुकर का "रस गंधर्व", भीष्म साहनी का "हानुश", सुशिलकुमार सिंह का "सिंहासन खाली है", मुद्राराक्षस का "योर्स फेथफुली" आदि नाटक विशेष सफल रहे।

इस समय में सौभाग्यवश नये नाटक को प्रशिक्षित एवं प्रतिभाशाली निर्देशकों का सहयोग प्राप्त हुआ, जिससे नाटक के मंचीय आयाम बढने में गतिशिलता आ गयी। अलकाजी, सत्यदेव दुबे, जयदेव हट्टगंडी, एम.के. रैना, बी.वी.कारन्त, गिरिश कर्नाड, रणजीत कपूर, बन्सी कौल, राजेन्द्र-नाथ आदि इस समय के प्रयोगधर्मी निर्देशक रहे, जिससे इस युग में नाटकीय सम्भावनाएँ भी बढती रही। इन प्रयोगशील नाटककारों में डा. भारती का "अंधा युग" नाटक भी विशेष सफल रहा। गेय पद्य शैली एवं वर्तमान युगबोध से जुडी पौराणिक कथावस्तु, सूत्रधार की वापसी आदि विशेषताएँ इस नाटक में दर्शित होती है। इस युग में नाटक में शिल्प, शैली, कथ्य में भी अभिनेयात्मक वृत्ती एवं मंचीय सुगमता का ध्यान रखा गया।

साठोत्तरी नाटक के रंगमंच के संदर्भ मै डा. चंद्रजी कहते है, "सन ६० के बाद हिंदी रंगमंच का बहुआयामी विकास हुआ। इस काल में मंच और रूप-सज्जा परम्परा से हटकर प्रतिकात्मकता की ओर उन्मुख हुई। रंगमंच ने नये-नये प्रयोग ग्रहण किए। लोकनाट्य के अनुकरण पर मुक्ताकाशी रंगमंचो पर अनेक नाटक खेले गए। मंच को यथार्थवादी सज्जा और तडक-भडक से हटकर

अभिनय और कार्यव्यापार से जोडा गया। नाटकों की भाषा पूरी तरह व्यवहार की रखी गयी। इस काल में मंच को अधिकाधिक सहज बनाने का प्रयास किया गया और नाटक की वस्तु को पूरी तरह यथार्थ रूप दिया गया। इससे रंगमंच को तो विकास मिला ही, साथ ही नाटक और दर्शक के बीच की दूरी भी कम हुई। विगत दशक में तो हिन्दी रंगमंच ने बडी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।"[९]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि वर्तमान नाटककारों ने नाट्य-कृति के विभिन्न रचनातत्वों का सम्मिलन कर उत्कृष्ठ एवं विविधतापूर्ण नाट्य-कृति के निर्माण का सजग प्रयास किया है।

१.७ डा. शंकर शेष के नाटक :

स्वातंत्र्योत्तर काल में सही अर्थ में हिंदी नाटक गतिशील एवं स्वस्थ बना। उसमें विषयवस्तु की विविधता, शिल्पसौष्ठव की नवीनता एवं रंगमंचीय चेतना की नयी संभावनाएँ विकसित होने लगी। स्वातंत्र्योत्तर काल में इन तीन दशकों में नाटक, अधिक समाज एवं परिस्थिति सापेक्ष बना। वह यथार्थवादी बना। इसी काल में हिंदी नाट्यसृष्टि में लोकधर्मी और नाट्यधर्मी परम्पराओं के प्रयोग की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। डा. शंकर शेष ने इन दोनों ही परम्पराओं का सफल निर्वाह अपने नाटकों में किया है, जिसमें उनकी सजग प्रयोगशील प्रतिभा के उन्मुक्त दर्शन होते है।

स्वातंत्र्योत्तर काल का परिवेश वर्ग-संघर्ष, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, महँगाई, बेरोजगारी, मानसिक तनाव आदि विभिन्न वर्तमान समस्याओं से ग्रस्त रहा। आदमी के इसी संगति पूर्ण परिवेश का तथा उसके सामाजिक, आर्थिक, मानसिक तनाव एवं विडम्बन का यथार्थ दर्शन समकालीन नाटको में तीव्रता से हुआ है। डा. शंकर शेष भी इसी समसामयिक वातावरण, समस्याग्रस्त मानवी जीवन की त्रासदी से चिंतित रहे, जिसका समग्र

चित्र उनके नाटकों में प्रतिबिंबित हुआ है। उनके बहुतांशी नाटको में तम-कालीन चेतना के प्रभावी दर्शन होते हैं।

डा. शंकर शेष के नाटकों में लोकधर्मी एवं नाट्यधर्मी दानों ही नाटकीय परम्पराओं का सफल निर्वाह मिलता है। उन्होंने अपने नाटकों में नौटंकी शैली, कीर्तन शैली जैसी लोकनाट्य शैलियों का भी सफल प्रयोग कर अपनी रंगमंचीय प्रतिभा के दर्शन कराये हैं। उनका हर नाटक अनोखी विशेषता एवं अलगता लेकर आता है।

रंगमंच की दृष्टि से डा. शेष के नाटक अत्याधिक सफल रहे। उनके केवल कालजयी छोड़कर सभी नाटकों के मंचीय प्रयोग भी हो चुके हैं। उनके नाटकों में मंचीय चेतना इतनी सजग एवं प्रभावी है कि उनके नाटक निर्देशकों के लिए एक चुनौति रहे। जयदेव हट्टंगडी, बी.वी.कारंथ, अरविंद देशपांडे जैसे कुशल निर्देशकों ने उनके नाटकों का निर्देशन किया। आज भी उनके नाटक रंगमंच पर सफलता से अभिनीत होते हैं, यह डा. शेष के नाटकों की असामान्य सफलता है।

डा. शेष ने कुल मिलाकर इक्कीस नाटकों की रचना की। केवल एक-दो अपवाद छोडकर शेष की सभी रचनाएं रंगमंच पर अभिनीत हो चुकी है। डा. शेष के नाटकों का रचनागत कौशल, विशेषताएँ उनके रचनाक्रम के अनुसार इसप्रकार हैं।

१.७.१ मूर्तिकार (१९५५) :

यह डा. शेष की प्रथम नाट्यकृति है। इसमें प्रधानत: कला, कलाकार एवं उसके संघर्ष को दर्शाते हुए प्रेम के विविध रूपों को प्रस्तुत किया गया है। प्रथम नाट्यकृति होकर भी इसमें कलात्मक बोध तथा शिल्पकार का निखरा व्यक्तित्व उत्कृष्ट बन पड़ा है।

१.७.२. नई सभ्यता के नये नमूने (१९५६) :

रचनाक्रम की दृष्टि से प्रस्तुत कृति का स्थान समग्र नाट्य-साहित्य में दूसरा है, तथापि मिथक के प्रयोग की दृष्टि से यह सर्वप्रथम नाट्य-कृति है। प्रस्तुत कृति के द्वारा डा. शेष ने यथार्थवादी धरातल पर दुराचारी एवं समाजविघातक लोगों की कुप्रवृत्ति एवं षडयंत्र का पर्दाफाश किया है। स्वातंत्र्योत्तर काल के बदलते सामाजिक मूल्य, सामाजिक, नैतिक अध:पतन एवं बनावटीपन की पोल खोलने का सफल प्रयास किया है।

१.७.३ रत्नगर्भा (१९५६) :

प्रस्तुत नाटक उच्च तथा मध्यवर्गीय सौंदर्याभिरुचि को प्रस्तुत करता है। साथ ही, इसमें प्रेम का उदात्त समर्पित रूप एवं आधुनिक संघर्षशील नारी का चित्रण सफलता से हुआ है।

प्रेम में मन की अपेक्षा तन को महत्ता देनेवाले लोगों की मांसल सौंदर्यप्रेमी वृत्ति का उद्घाटन कर, समकालीन सौंदर्य दृष्टि की ओर भी संकेत किया गया है। प्रभावशाली कथ्य एवं सुगठित शिल्पविधान से प्रस्तुत नाटक अनूठा बन पडा है।

१.७.४ बेटोवाला बाप (१९५८) :

डा. शेष की प्रस्तुत कृति रचनाक्रम की दृष्टि से चौथी है। इसका प्रथम मंचन नागपूर के "धनवटे" नामक आधुनिक सुविधाओं से संपन्न नाट्य गृह में हुआ। रंगमंच की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक सफल रहा।

१.७.५ तिल का ताड (१९५८) :

हास्य व्यंग्य शैली में लिखा हुआ यह डा. शेष का प्रथम

नाटक है, जो मानवी जीवन की विसंगति को प्रस्तुत करता है। शिल्प और शैली की दृष्टि से प्रस्तुत कृति औसत स्तर की है, फिर भी इसमें व्यंग्य की पर्याप्त संभावनाएं पायी जाती हैं। कथाविकास की गुंजाइश कम रहने से यह कृति अधिक सफल न हो सकी।

१.७.६ बिन बाती के दीप (१९६८) :

डा. शेष के सभी नाटकों में सर्वप्रथम प्रकाशित होने का सौभाग्य इसी कृति को मिला। वैसे रचनाक्रम की दृष्टि से इसका स्थान छठा है। इसका प्रथम मंचन श्री विनायक चासकर के निर्देशन में भोपाल की "नाट्य सुधा" संस्था द्वारा हुआ था। प्रस्तुत कृति में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर पुरुष की अतिरिक्त महत्वाकांक्षा एवं नारी के समर्पिता शोषिता रूप को सफलता से उजागर किया गया है। रंगमंच की दृष्टि से भी यह नाटक एक सफल प्रयास है।

१.७.७ बाढ का पानी : चंदन के दीप (१९६८) :

यह नाटक जातिवाद की समस्या को लेकर चलता है। इसका प्रथम मंचन "नाट्यसुधा" संस्था नागपुर द्वारा संपन्न हुआ है, जिसे नाट्यलेखन प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।

१.७.८ बंधन अपने-अपने (१९६९) :

१९७२-७३ में अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा प्रस्तुत कृति का प्रकाशन हुआ। इसका प्रथम मंचन "नाट्यसुधा" के चतुर्थ वार्षिक समारोह के अवसर पर दिनांक २५ सितम्बर, १९७१ को रविंद्र नाट्यगृह, भोपाल (मध्यप्रदेश) में हुआ। तीन अंकों में विभाजित प्रस्तुत कृति में शिक्षा व्यवस्था में आयी समझौते की वृत्ति एवं बदलते गुरु-शिष्य सम्बन्धों के प्रति

पाठक को सचेत किया गया है। जिससे प्रस्तुत कृति यथार्थवादी रचना बन गयी है। प्रस्तुत नाटक की व्यंग्यशैली दर्शक को अंतर्मुख बनाती है। रंगमंच की दृष्टि से भी यह रचना एक सफल कृति है।

१.७.९ खजुराहो का शिल्पी (१९७०) :

डा. शेष की नाट्यधर्मी प्रतिभा का सम्पूर्ण आविष्कार आलोच्य कृति में मिलता है। वस्तुसंगठन, शिल्पविधान, काव्यमय भाषा, उत्कृष्ठ कलात्मक शैली प्रस्तुत नाटक की मौलिक विशेषताएँ हैं।

प्रस्तुत नाटक में "मोह के क्षण" का दार्शनिक विस्तार हुआ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की चित्रमय अभिव्यक्ति नाटक में बड़ी सुंदर बन पडी है। काम के बाद ही मोक्ष का स्थान है, यह विचार नाटक का केंद्रबिंदु रहा है।

इसी नाटक से ही डा. शेष सर्वप्रथम मंच पर आए। राष्ट्रीय प्रसारण मंच पर यह नाटक सभी भारतीय भाषाओं में प्रसारित हो चुका है। कथ्य, शिल्प एवं मंच सभी दृष्टियों से यह नाटक बहुत ही सफल रहा है।

१.७.१० फंदी (१९७१) :

प्रस्तुत रचना नाटक के नए तंत्र को लेकर चलती है। रंगमंचीय सादगी एवं नाटक के भीतर नाटक का प्रयोग नाटककार की सफलता है। एक ही पात्र द्वारा नौ भूमिकाओं को प्रस्तुत करना, डा. शेष की नाटकीय कुशलता को प्रस्तुत करता है। नाटक के इस नए तंत्रविधान की दृष्टि से "फंदी" एक विशेष मौलिक रचना है। मानवीय करुणा को गहराई प्रदान करनेवाली यह कृति नाटककार के व्यापक चिंतन स्तर को स्पष्ट करती है।

१.७.११ एक और द्रोणाचार्य (१९७१) :

प्रस्तुत रचना में नाटककार का शिक्षा क्षेत्र के प्रति प्रौढ चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। इसमें प्राचीनता के माध्यम से आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का बोध किया गया है। दृश्यत्व के दोहरे आयाम से नूतन नाटकीय संकल्पना का प्रयोग नाटककार का अनोखा कौशल है। इसमें शिक्षा क्षेत्र में चलनेवाले भ्रष्टाचार, लाचारी, बदलते सामाजिक मूल्य एवं नष्ट हो रही परम्परा आदि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कृति में सफलता से हुआ है।

१.७.१२ कालजयी (१९७३) :

प्रस्तुत नाटक ऐतिहासिक कथा के माध्यम से राजनीतिक संघर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास है। इसमें संघर्ष तत्वों का कौतुहलपुर्ण अविष्कार मिलता है। डा. शेष ने इसमे पात्रो का मनोवैज्ञानिक चित्रण कर अपनी नाटकीय क्षामता एवं कौशल को प्रकट किया है। शिल्प एवं कथ्य की दृष्टि से यह एक सफल कृति है।

१.७.१३ घरौंदा (१९७४) :

प्रस्तुत कृति मध्यवर्गीय जीवन के पारिवारिक, मानसिक तनाव एवं समस्याओं की समकालिन अभिव्यक्ति है। इसमें नाटककार ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की सामंजस्यता एवं पूरकता की आवश्यकता दर्शाते हुए विषयवस्तु को मांगल्य के सोपान तक पहुँचाया है।

कथ्य, शिल्प, अभिनय सभी दृष्टियों से प्रस्तुत कृति सफल रचना है। रंगमंचीय सादगी एवं अभिनय चेतना की सशक्तता प्रस्तुत नाटक की मौलिक विशेषता है।

१.७.१४ अरे मायावी सरोवर (१९७५) :

पौराणिक कथा के आधारपर लिखा यह नाटक सम्यक जीवन दृष्टि को नौटंकी शैली में प्रस्तुत करता है। इसमें सुगठित शिल्प के साथ-साथ उसका सार्थक प्रयोग भी हुआ है। यह एक सफल प्रायोगिक रचना है।

१.७.१५ रक्तबीज (१९७६) :

प्रस्तुत रचना डा. शेष के बहुचर्चित नाटकों में से एक है। १९७८ से १९८२ तक यह कृति पैतालीस बार रंगमंच पर सफलता से अभिनीत हो चुकी है। बहुआयामी इस कृति में डा. शेष के प्रौढ चिंतन की व्याख्या मिलती है। पौराणिक मिथ के साथ आधुनिकता को जोडकर नयी संभावनाओं का उद्घाटन प्रस्तुत कृति में सफलता से हुआ है। अत: यह एक श्रेष्ठ एवं सफल कृति है।

१.७.१६ पोस्टर (१९७७) :

"पोस्टर" मध्ययुगीन लोकनाट्य परम्परा का एक सफल प्रयास है। "अरे मायावी सरोवर" की नौटंकी शैली के पश्चात "पोस्टर" में महाराष्ट्र की कीर्तन शैली का सफल निर्वाह; नाटककार की सजग नाट्यप्रतिभा को मूर्त करता है। "पोस्टर" एक सामाजिक नाटक है, जो मालिक-मजदूर के अनादि वर्गसंघर्ष को लेकर चलता है। प्रभावशाली शिल्पविधान एवं प्रयोगधर्मी परम्परा की सबल चेतना प्रस्तुत नाटक की मौलिक विशेषताएँ हैं।

१.७.१७ राक्षस (१९७७) :

यह एक प्रतिकात्मक अर्थगम्भीर रचना है। इसमें विश्व मानवता के सामने फैली हुअी चुनौतियों का स्पष्टीकरण किया गया है। यह भी एक लोकनाट्य है। हास्य-व्यंग्य शैली से युक्त यह नाटक गम्भीर जीवनदृष्टि

को साकार करता है। इसकी शैली आकर्षक है, किंतु शिल्प की शिथीलता के कारण यह एक साधारण रचना साबित होती है।

१.७.१८ चेहरे (१९७८) :

प्रस्तुत कृति मानवी मनोवृत्ति के विभिन्न मुखौटो द्वारा मानवीय मूल्यबोध का प्रतिपादन करती है। दृश्य एवं अदृश्य चेहरों के बीच चलते फासलों को व्यंग्यपूर्ण शैली के द्वारा नाटककार ने बखुबी चित्रित किया है। "चेहरे" सामाजिक विसंगति को यथार्थता से चित्रित करता है।

यह दूरदर्शन के लिए लिखा नाट्यरूपक है, जिसमें शिल्प की नवीनता भी दृष्टिगोचर होती है। रंगमंच की दृष्टि से भी यह पूर्ण सफल है।

१.७.१९ कोमल गांधार (१९७९) :

पौराणिक कथा के माध्यम से समकालीन यथार्थबोध, प्रस्तुत नाटक की मौलिक विशेषता है। प्रस्तुत कृति का उद्देश्य पौराणिक कथा का वहन करना न होकर उसके द्वारा अर्थ के नये आयामोंको प्रस्तुत करना रहा है। यह नाटककार के प्रौढ एवं गम्भीर चिंतन की फलश्रुति है। गम्भीर एवं प्रौढ भाषाशैली, चिंतनशील संवाद शक्ति इस नाटक की अनूठी विशेषताएं हैं।

१.७.२० आधी रात के बाद (१९८१) :

यह डा. शेष की अंतिम रचना है। नाटक का सम्पूर्ण कथ्य आधी रात में ही प्रस्तुत होता है। नाटककार ने समस्त कथा को जासुसी शैली में प्रस्तुत कर दर्शकों की जिज्ञासा वृत्ति को बढाया है। साथ ही इसमें वर्तमान जीवन की विडम्बना का प्रस्तुतिकरण सहजता से एवं सफलता से हुआ है। रंगमंच की दृष्टि से भी यह एक सफल कृति रही है।

१.७.२१ निष्कर्ष :

नाटक एक जीवनवादी कला है। प्राचीन काल से ही वह मानवी मन का रंजन करती आयी है। बदलते हुए समय के साथ-साथ उसके उद्देश्यों में भी व्यापकता आ रही है। अपनी प्रायोगिक विशेषता के कारण वह समस्त साहित्य में एक सर्वश्रेष्ठ कला, सर्वोत्तम साहित्य-विधा के रूप में प्रतिष्ठित है।

पूर्व भारतेंदु युग में संस्कृत नाट्य परम्परा के प्रभाव स्वरूप हिंदी में नाटक साहित्य का उद्भव हुआ। इस समय मौलिक नाटक कम लिखे गए। ज्यादातर संस्कृत से हिंदी में अनुवाद की परम्परा जारी रही। कलात्मकता तथा साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से ये नाटक साधारण ही रहे।

भारतेन्दु युग में हिंदी नाटक संस्कृत के प्रभाव से मुक्त होकर समकालीन सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त करने लगा। इतिहास के प्रति रुचि तथा खडी बोली हिंदी का प्रयोग इस युग के नाटक की महत्त्वपूर्ण उपलब्ध रही, किंतु शिल्पविधी की दृष्टि से इस समय का नाटक स्थूल ही रहा।

भारतेन्दु युग के पश्चात इ.स.१९०१ से लेकर इ.स.१९२० तक का काल हिंदी नाटक साहित्य का द्विवेदी युग है। इस युग में मौलिक नाटक कम लिखे गए। अनुवादों की ही अधिक भरमार रही। चमत्कार प्रदर्शन एवं रंजनवादी प्रवृत्ति के कारण, इस युग में नाटक का स्तर सामान्य ही रहा।

प्रसाद युग में हिंदी नाटक विकास की नयी दिशा में आगे बढा। संस्कृत नाट्यप्रभाव से मुक्ति एवं पाश्चात्य तथा भारतीय नाट्य तत्त्वों का समन्वय इस युग के नाटक की मौलिक विशेषता रही। प्रेरक सांस्कृतिक चेतना एवं गौरवशाली इतिहास का चित्रण इस समय के नाटक का प्रधान विषय रहा। इस समय के नाटक साहित्यिक गुणों की दृष्टि से उच्च स्तर के

रहे, परंतु उसकी प्रायोगिकता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया।

प्रसाद युग के पश्चात १९३४ से लेकर १९४७ तक का नाटक कथ्य, शिल्प, शैली तथा प्रयोग की दृष्टि से नवचेतना लेकर आया। पौराणिक ऐतिहासिक कथावस्तु के माध्यम से समसामयिक सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति उसमें प्रधान रूप से होने लगी। प्रतीक नाटक, रेडियो नाटक, एकांकी के रूप में उसने विकास की एक नयी दिशा ग्रहण की।

स्वातंत्र्योत्तर युग सही अर्थ में हिंदी नाटक साहित्य का विकासात्मक युग है। इस काल में विशेषकर छठे, सातवें, आठवें दशक में प्रायोगिकता की ओर अधिक ध्यान दिया गया। इस काल में मोहन राकेश धर्मवीर भारती, डा. जगदिशचंद्र माथुर, मणि मधुकर, मुद्राराक्षस, डा.लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेंद्र वर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री आदि ने हिंदी नाटक साहित्य को प्रायोगिक नाटक दिए। डा. शेष ने चेहरे, अरे मायावी सरोवर, खजुराहो का शिल्पी, रक्तबीज, पोस्टर, जैसे नाटक लिखकर अपना महत्वपूर्ण योगदान नाटक साहित्य को दिया।

डा. शंकर शेष स्वातंत्र्योत्तर काल के एक महत्वपूर्ण नाटककार रहे। वे छठे, सातवें, आठवें, इन तीनों ही दशकों में नाट्यसृजन से जुडे रहे। कथ्य, शिल्प, शैली एवं रंगमंच सभी दृष्टियों से उनके नाटक अपनी अनोखी विशेषता रखते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल के एक सजग, प्रतिभाशाली नाटककार के रूप में वे कृतिशील रहे।

विषयवस्तु की विविधता डा. शेष के नाटकों की प्रधान विशेषता रही। उन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक, मिथकीय तथा समसामयिक परिस्थिति को लेकर नाटकों की निर्मिति की। उन्होंने पौराणिक कथाप्रसंगों को लेकर उसे वर्तमान युगबोध से जोडने का सफल प्रयास किया। उनके "एक और द्रोणाचार्य", "कोमल आंधार", "रक्तबीज" "अरे। मायावी सरोवर" आदि

नाटक इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे। कलात्मक बोध उनके नाटक की अनूठी विशेषता रही। "मूर्तीकार", "खजुराहो का शिल्पी" आदि नाटकों में शिल्पकार का निखरा व्यक्तित्व एवं कलाविषयक चिंतन प्रकट हुआ है। "खजुराहो का शिल्पी" एवं कुछ मात्रा में "कोमल गांधार" में "मोह के क्षण" की विस्तृत व्याख्या दार्शनिक धरातल पर दृष्टव्य है।

डा. शेषजी ने अपने नाटकों द्वारा समसामयिक यथार्थ को वाणी देने का सफल प्रयास किया है। शिक्षा क्षेत्र में चल रहे भ्रष्टाचार, लाचारी, आदिवासी प्रांत में चल रही शोषणनीति, प्रशासनव्यवस्था, की निष्क्रीयता, स्वार्थलोलुपता एवं मजदुर वर्ग की बेबसी, दिन-प्रतिदिन घट रही मूल्य नीति, पारिवारिक तनाव, बढती महँगाई से त्रस्त सामान्य मानवी जीवन कला, शिक्षा, न्याय, साहित्य में आयी शोषणनीति आदि का यथार्थ चित्रण उनके सभी नाटकों में सक्षमता से हुआ है। साथ ही, शेषजी ने प्रेम के परम्परागत स्वरूप को चित्रित न कर उसे वर्तमान धरातल पर चित्रित किया है, जिसमें वर्तमान मानवीय सम्बन्धों के विविध आयाम प्रस्तुत हुए हैं।

प्रयोगशीलता उनके नाटक की उल्लेखनीय विशेषता रही। उन्होंने रंगमंच को दृष्टि में रखकर नाट्यनिर्मिति की। रंगमंच को लेकर वे हमेशा नितनूतन प्रयोग करते रहे। "अरे मायावी सरोवर" की नौटंकी शैली के पश्चात, "पोस्टर" में महाराष्ट्र की कीर्तन शैली का सफल विनियोग किया। प्राय : उनके सभी नाटक अभिनीत हो चुके हैं। एक ही पात्र द्वारा अधिक भूमिकाओं को प्रस्तुत करना, नाटक के भीतर नाटक का प्रयोग, रंगमंचीय सादगी, नाटक में प्राचीन लोककलाओं की सफल प्रस्तुति उनके नाटकों को उँचा उठा देती है। राष्ट्रीय रंगमंचपर तथा राज्य नाट्य प्रतियोगिताओं में उनके नाटक सफलता से अभिनीत होते हैं, बार-बार उनके सफल प्रयोग होते हैं, यह डा.शेष की नाट्यधर्मी प्रतिभा का ही प्रमाण है।

डा.शेष के कई नाटक विभिन्न नाट्यसंस्थाओं की ओर से पुरस्कृत भी हो चुके हैं। जैसे मध्यप्रदेश सरकार द्वारा "बाढ़ का पानी", "चंदन के दीप" तथा "बंधन अपने-अपने" कृतियाँ पुरस्कृत हो चुकी हैं। उनके "घरौंदा" के लिए "आशीर्वाद" पुरस्कार मिला है, तो साहित्य कला परिषद दिल्ली, द्वारा "कोमल गांधार" भी पुरस्कृत हो चुका है, तो "खजुराहो का शिल्पी" राष्ट्रीय रंगमंच पर सफलता से खेला गया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल के सफल नाटककार डा.लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि नाटककारों के साथ डा. शेष ने भी एक सजग, प्रतिभाशाली नाटककार के रूप में कार्य किया। अपनी प्रयोगधर्मिता एवं शिल्पगत मौलिकता से वे आधुनिक हिंदी नाट्यसाहित्य में अपना वैशिष्टयपूर्ण स्थान बनाए हुए है। इसप्रकार, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों में डा. शंकर शेष एक उल्लेखनीय नाटककार के रूप में पहचाने जाते हैं।

: संदर्भ :

१) डा. दशरथ ओझा - हिंदी नाटक उद्भव और विकास -पृष्ठ क्र. ८०

२) डा. दशरथ ओझा - हिंदी नाटक उद्भव और विकास - पृष्ट क्र. १३७

३) सं. राजमल बोरा, नारायण शर्मा - हिंदी नाटक और रंगमंच- पृष्ठ क्रे. ९५

४) डा. शिवकुमार शर्मा - हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ पृ.क्र. ५५९,५६०

५) डा. सुंदरलाल शर्मा - हिंदी नाटक का विकास - पृ.क्र. १७

६) डा. शांति मलिक - हिंदी नाटकों की शिल्पविधी का विकास-पृ.क्र. १४५

७) डा. रामजन्म शर्मा - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों का विकास-पृ.क्र. ६७,६८

८) डा. चंदुलाल दुबे - हिंदी नाटकों का रूपविधान और वस्तुविकास-पृ.क्र. २०५

९) डा. चंद्र - नाट्यचिंतन : नये संदर्भ - पृ.क्र. १२,१३